आख़िर आलू का कुछ बयाँ हो जाए

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

(यह एक हास्य-व्यंग्य लेख है जो मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी की पुस्तक ख़ाकम बदहन (मेरे मुँह में ख़ाक) में शामिल है। इसमें मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और आलू से मिर्ज़ा की चिढ़ से बात शुरू होती है और मिर्ज़ा द्वारा गुलाब और आलू की खेती करने के हास्यास्पद परीक्षण तक पहुँचती है। निबंध में 'मिर्ज़ा' का विस्तृत रेखाचित्र है और तीन-चार लघु रेखाचित्र भी हैं। निबंध में 'प्रोफ़ेसर' का उल्लेख भी कहीं-कहीं हुआ है। दरअसल 'मिर्ज़ा' और 'प्रोफ़ेसर' जिनके पूरा नाम 'मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग' और 'प्रोफ़ेसर क़ाज़ी अब्दुल क़ुद्दूस एम.ए. बी.टी.गोल्डमेडलिस्ट' है, यूसुफ़ी के मित्र या हमज़ाद (छायापुरुष) के रूप में उनकी अधिकतर रचनाओं में मौजूद होते हैं। ये दोनों पात्र अपने ऊटपटांग विचारों और विचित्र दलीलों के लिए जाने जाते हैं। यूसुफ़ी अपनी अकथनीय, उत्तेजक और गुस्ताख़ाना बातें मिर्ज़ा और प्रोफ़ेसर की ज़ुबान से कहलवाते हैं। ये किरदार हमें मुल्ला नसरुद्दीन की याद दिलाते हैं।

बात से बात निकालना, लेखनी के हाथों में खुद को सौंपकर मानो केले के छिलके पर फिसलते जाना अर्थात विषयांतर, हास्यास्पद परिस्थितियों का निर्माण, अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन, किरदारों की सनक और विचित्र तर्कशैली, एक ही वाक्य में असंगत शब्दों का जमावड़ा, शब्द-क्रीड़ा, अनुप्रास अलंकार, हास्यास्पद उपमाएं व रूपक, अप्रत्याशित मोड़, कविता की पंक्तियों का उद्धरण, पैरोडी और मज़ाक़ की फुलझड़ियों व हास्य रस की फुहारों के बीच साहित्यिक संकेत व दार्शनिक टिप्पणियाँ, और प्रखर बुद्धिमत्ता यूसुफ़ी साहब की रचना शैली की विशेषताएँ हैं। उनके फ़ुटनोट भी बहुत दिलचस्प होते हैं। इस निबंध में यूसुफ़ी साहब की रचना शैली की अनेक विशेषताएँ विद्यमान हैं।-----अनुवादक)

***

दूसरों को क्या कहें, हम खुद बीसियों चीज़ों से चिढ़ते हैं——पनीर, करमकल्ला, कम्बल, कॉफ़ी और काफ़्का, औरत का गाना, मर्द का नाच, गेंदे के फूल, इतवार का मुलाक़ाती, मुर्ग़ी का गोश्त, पानदान, ग़रारा, सुन्दर औरत का पति——आगे कुछ कहना गुस्ताख़ी होगी क्योंकि संपूर्ण सूची हमारे पापों की सूची से भी ज़्यादा लम्बी और हरी-भरी निकलेगी। पापी सही, लेकिन मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग की तरह यह हमसे आज तक न हुआ कि अपने पूर्वाग्रहों पर तर्कों का नीम चढ़ाकर दूसरों को अपनी बेस्वादी में बराबर का भागीदार बनाने की कोशिश की हो। मिर्ज़ा तो किसी के शब्दों में, ग़लत तर्क के सम्राट हैं। उनकी हिमायत व वकालत से माक़ूल से माक़ूल "कॉज़" बेहद लचर मालूम होने लगता है। इसीलिए हम सब उन्हें धर्म प्रचार और सरकार के समर्थन से बड़ी सख़्ती से मना करते हैं। उनकी एक चिढ़ हो तो बताएँ। सूची रंगारंग ही नहीं, इतनी ग़रीब-हितैषी भी है कि इसमें इस बेगुनाह फ़क़ीर का नाम भी ख़ासी ऊँची पोज़ीशन पर शामिल रह चुका है। बाद में हमसे यह पोज़ीशन बैंगन के भुरते ने छीन ली और उससे जैकी कैनेडी के दूल्हा ओनासिस ने हथिया ली। मिर्ज़ा को आज जो चीज़ पसंद है, कल वह दिल से उतर जाएगी और परसों तक यक़ीनन चिढ़ बन जाएगी। लोग हमें मिर्ज़ा का

हमदम व हमराज़ ही नहीं, हमज़ाद (छायापुरुष) भी कहते हैं। लेकिन इस अंतरंगता और घनिष्ठता के बावजूद हम यक़ीन से नहीं कह सकते कि मिर्ज़ा ने आलू और अबुल कलाम आज़ाद को पहले-पहल अपनी चिढ़ कैसे बनाया। और यह कि दोनों को तिहाई सदी से एक ही ब्रैकेट में क्यों बंद कर रखा है?

चमेली के फूल की बास बाक़ी है

मौलाना के बारे में मिर्ज़ा को जितना खुरचा, पूर्वाग्रह के मुलम्मे के नीचे शुद्ध तर्क की यह मोटी-मोटी तहें निकलती चली गईं। एक दिन कई वार ख़ाली जाने के बाद फ़रमायाः

"एक शैलीकार ललित निबंधकार ने नदवतुल-उलेमा[1] के संस्थापक के बारे में लिखा है कि शिबली पहला यूनानी था जो मुसलमानों में पैदा हुआ। इसपर मुझे यह गिरह लगाने की अनुमति दीजिए कि यूनानियों की इस इस्लामी शाखा में अबुल कलाम आख़िरी लिखारी था जिसने उर्दू लिपि में अरबी लिखी!"

हमने कहा, "उनकी माफ़ी के लिए यही काफ़ी है कि उन्होंने धर्म में दर्शन का रस घोला। उर्दू को अरबी भाषा की संवेदना, गरिमा व मार्मिक छुअन प्रदान की।"

फ़रमाया, "उनकी गद्य का पढ़ना ऐसा है जैसे दलदल में तैरना! इसीलिए मौलवी अब्दुल हक़ खुल्लम-खुल्ला उन्हें उर्दू का दुश्मन कहते हैं। ज्ञान व बुद्धिमत्ता अपनी जगह, मगर इसको क्या कीजिए कि वे अपने अहंकार और उर्दू पर अंतिम दम तक क़ाबू न पा सके। कभी-कभार रमज़ान में उनका *तर्जुमानुल क़ुरआन*[2] पढ़ता हूँ (अपने दोनों गालों पर थप्पड़ मारते हुए) अल्लाह माफ़ करे! महसूस होता है कि अल्लाह के कलाम (वाणी) के परदे में अबुल कलाम बोल रहा है!"

हमने कहा, "लाहौल-व-लाक़ूवत! उस बुज़ुर्ग की सारी की हुई या न की हुई ख़ताएँ तुम्हें सिर्फ़ इस आधार पर माफ़ कर देनी चाहिएँ कि तुम्हारी तरह वे भी चाय के रसिया थे। क्या नाम था उनकी पसंदीदा चाय का? अच्छा सा नाम था। हाँ याद आया वाइट जैसमिन! सफ़ेद चमेली!"

खिल उठे। फ़रमाया, "मौलाना का मशरूब (पेय-पदार्थ) भी उनके मशरब (विचारधारा) की मानिंद था। टूटे हुए बुतों को जोड़-जोड़कर इमामुल-हिन्द[3] ने ऐसी देव-मूर्ति तराशने की कोशिश की जो सोमनाथ-वासियों को भी क़ुबूल हो। यूनानी दर्शनशास्त्र की ऐनक से जब उन्हें दीन (धर्म) में दुनिया और खुदा में ना-खुदा (विधर्मी) का दर्शन होने लगा तो वे मुसलमान हो गए और सच्चे दिल से अपने आप पर ईमान ले आए। उसी तरह यह चीनी चाय सिर्फ़ इसलिए उनके दिल को भा गई कि इसमें चाय के बजाय चमेली के गजरे की लपट आती है। हालाँकि कोई शख़्श जो चाय पीने का ज़रा भी सलीक़ा रखता है, इसलिए चाय पीता है कि उसमें चाय की—— सिर्फ़ चाय की —— महक आती है, न कि चमेली के तेल का भभका!"

हमने कहा, "ताज्जुब है! तुम इस भ्रष्ट भाषा में उस आनंदवर्द्धक पेय का उपहास कर रहे हो, जो बक़ौल मौलाना, 'व्यग्र व विद्रोहोन्मुख मनोदशा को मदहोशियों का, और संसार को तहस-नहस कर देने वाले मन के विचार-बवंडरों को तृप्ति का निमंत्रण दिया करती थी।'"

इस जुमले से ऐसे भड़के कि भड़कते चले गए। लाल-पीले होकर बोले, "तुमने लिप्टन कंपनी का पुराना इश्तेहार 'चाय सर्दियों में गर्मी और गरमियों में ठंडक पहुँचाती है' देखा होगा। मौलाना ने यहाँ इसी जुमले का अनुवाद अपने प्रशंसकों की आसानी के लिए अपनी ज़ुबान में किया है!"

बहस और दिल के टूटने का यह सिलसिला काफ़ी देर तक जारी रहा। लेकिन कुफ़्र (अधर्म) का और बयान करके हम अपना लोक-परलोक बिगाड़ना नहीं चाहते। लिहाज़ा इस भूमिका के बाद मिर्ज़ा की दूसरी चिढ़ यानी आलू की तरफ़ मुड़ते हैं।

ये दाँत सलामत हैं जब तक

मिर्ज़ा का "बॉस" दस साल बाद पहली बार तीन दिन के अवकाश पर जा रहा था और मिर्ज़ा ने अपने सलाहकारों और शुभचिंतकों को मुक्ति-दिवस मनाने के लिए बीच-लग्जरी होटल में लंच पर आमंत्रित किया था। वहाँ हमने देखा कि समुद्री कछुए का शोरबा सुड़-सुड़ पीने के बाद मिर्ज़ा समूचे केकड़े (समूचे का मतलब यह है कि स्वर्गीय की समूची टाँगें, खपरे, आँखें और मूँछें प्लेट पर अपने प्राकृतिक रूप में नज़र आ रही थीं) पर टूट पड़े। हमने कहा मिर्ज़ा हमने तुम्हें चहका मारती ख़मीरी नान खाते देखा है, खुरों के चटपटे सरेश (गोंद) में डुबो-डुबोकर, जिसे तुम दिल्ली के निहारी-पाए कहते हो। मुफ़्त की मिल जाए तो सड़ांधी सार्डीन यूँ निगलते हो मानो नाक नहीं रखते। और तो और रंगामाटी में चकमा क़बीले की एक कुँआरी कन्या के हाथ से नशीला कसैला जैक-फ्रूट लप-लप खाते हुए फ़ोटो खिंचवा चुके हो। और उसके बाद पेशावर में चिड़ों के पकोड़े खाते हुए भी पकड़े जा चुके हो। तुम्हारी खान-पान नीति में हर चीज़ हलाल है सिवाय आलू के।

खिल गए। फ़रमाया "हमने आज तक किसी मौलवी ——— किसी सम्प्रदाय के मौलवी की तंदुरुस्ती ख़राब नहीं देखी। न किसी मौलवी का हार्टफ़ेल होते सुना। जानते हो क्या वजह है? पहली वजह तो यह है कि मौलवी कभी वर्ज़िश नहीं करते। दूसरी यह कि सादा भोजन और सब्ज़ी से परहेज़ करते हैं!"

प्रस्तुत होटल और आलू का प्रभुत्व

सब्ज़ी न खाने के फ़ायदे मन में बिठाने के मक़सद से मिर्ज़ा ने अपने अनुभवों पर आधारित जीवन के उन पक्षों को बेनक़ाब किया जो आलू से रासायनिक तौर पर प्रभावित हुए थे। चर्चा आलू की है। उन्हीं के छिद्रान्वेषी श्रीमुख से अच्छी मालूम होगीः

'तुम्हें तो क्या याद होगा। मैं दिसंबर 1951 ई. में मोंटगोमेरी गया था। पहली दफ़ा कराची से बाहर जाने पर मजबूर हुआ था। मोंटगोमेरी के प्लेटफ़ॉर्म पर उतरते ही महसूस हुआ जैसे सर्दी से ख़ून रगों में जम गया है। उधर चाय के स्टाल के पास एक बड़े मियाँ गरम चाय के बजाय माल्टे का रस पिए चले जा रहे थे। उस ख़ुदा के बन्दे को देख-देखकर और दाँत बजने लगे। कराची की स्थाई उमस और बग़ैर खिड़कियों वाला कमरा बुरी तरह याद आए। क़ुली और ताँगे वाले से विचार-विमर्श के बाद एक होटल में बिस्तर लगा दिया, जिसका असली नाम आज तक मालूम न हो सका। लेकिन मैनेजर से लेकर मेहतर तक सभी उसे प्रस्तुत होटल

कहते थे। कमरा सिर्फ़ एक ही था जिसके दरवाज़े पर कोयले से अंग्रेज़ी अक्षरों में "वार्ड व कमरा नम्बर 1" लिखा था। प्रस्तुत होटल में न केवल यह कि कोई दूसरा कमरा नहीं था, बल्कि निकट या दूर भविष्य में उसके निर्माण की संभावना भी नज़र नहीं आती थी, क्योंकि होटल के तीन तरफ़ म्युनिसिपलिटी की सड़क थी और चौथी तरफ़ उसी संस्था की केन्द्रीय नाली जो शहर की गन्दगी को शहर ही में रखती थी, जंगल तक नहीं फैलने देती थी। कमरा नम्बर 1 प्रायद्वीप में "अटैच्ड बाथरूम" तो नहीं था, अलबत्ता एक अटैच्ड तंदूर ज़रूर था, जिससे कमरा इस कड़ाके की सर्दी में ऐसा गरम रहता था कि बड़े-बड़े सेंट्रली हीटेड (Centrally heated) होटलों को मात देता था। पहली रात हम बनियान पहने सो रहे थे कि तीन बजे सुबह जो तपिश से एकाएकी आँख खुली तो देखा कि इमामदीन बैरा हमारे सिरहाने हाथ भर लम्बी खून में सनी छुरी लिए खड़ा है। हमने फ़ौरन अपनी गर्दन पर हाथ फेरकर देखा। फिर चुपके से बनियान में हाथ डालकर पेट पर चुटकी ली और फिर कलमा पढ़के इतनी ज़ोर से चीख़ मारी कि इमामदीन उछल पड़ा और छुरी छोड़कर भाग गया। थोड़ी देर बाद दो-तीन बैरे समझा-बुझाकर उसे वापस लिवा लाए। उसके होश ठिकाने आए तो मालूम हुआ कि छुरी से वह नन्ही-नन्ही बटेरें ज़बह कर रहा था। हमने गरिमापूर्ण ढंग से कहा, "अक़लमंद आदमी! यह पहले क्यों न बताया?" उसने फ़ौरन अपनी भूल की माफ़ी माँगी और वादा किया कि आइन्दा वह पहले ही बता दिया करेगा कि छुरी से बटेर ही ज़बह करना चाहता है। और उसने आसान पंजाबी में यह भी आश्वासन दिया कि आइन्दा वह चीख़ सुनकर डरपोकों की तरह भयभीत नहीं हुआ करेगा।

हमने रसान (धीमे) से पूछा, "तुम उन्हें क्यों ज़बह कर रहे थे?"

बोला, "जनाब! ज़िला मोंटगोमेरी में जानवर को हलाल करके खाते हैं! आप भी खाएँगे?"

हमने थोड़ा रूखेपन से जवाब दिया "नहीं!" और रेलवे टाइम टेबुल से पंखा झलते हुए सोचने लगे कि जो लोग दूध पीते बच्चों की तरह जल्दी सोते और जल्दी उठते हैं, वे इस मर्म को क्या जानें कि नींद का असल आनंद और सोने का सही स्वाद आता ही उस समय है जब आदमी उठने के निर्धारित समय पर सोता रहे, क्योंकि इस चुराई हुई घड़ी में निंदिया-रस का प्रादुर्भाव होता है। इसीलिए किसी जानवर को सुबह देर तक सोने की योग्यता नहीं प्रदान की गई। अपने अशरफ़ुल-मख़लूक़ात (सर्वश्रेष्ठ प्राणी) होने पर खुद को बधाई देते-देते सुबह हो गई और हम पूरी और आलू-छोले का नाश्ता करके अपने काम पर चले गए। थोड़ी देर बाद पेट में भारीपन महसूस हुआ। लिहाज़ा दोपहर को आलू-पुलाव और रात को आलू और पनीर का क़ोरमा खाकर तंदूर की गरमाई में ऐसे सोए कि सुबह चार बजे बैरे ने अपने ख़ास तरीक़े से जगाया, जिसका विस्तारपूर्ण वर्णन आगे आएगा।

नाश्ते से पहले हम सिर झुकाए क़मीज़ का बटन नोचकर पतलून में टाँकने की कोशिश कर रहे थे कि सूई खच्च से ऊँगली में भुंक गई। बिल्कुल बिना सोचे-समझे झट से हमने ऊँगली अपनी क़मीज़ की जेब में रखकर दबाई, मगर जैसे ही दूसरी ग़लती का अहसास हुआ तो खून के गीले धब्बे पर सफ़ेद पाउडर छिड़ककर छिपाने लगे और दिल में सोचने लगे कि अल्लाह ने बीवी भी क्या चीज़ बनाई है। लेकिन इंसान बड़ा अकृतज्ञ है। अपनी बीवी की क़दर नहीं करता। इतने में बैरा मुक़ामी शुद्ध घी में तली हुई पूरियाँ ले आया। मोंटगोमेरी

का असली घी पाकिस्तान भर में सबसे अच्छा होता है। इसमें चार फ़ीसद घी होता है। बैरे ने हस्बेमामूल अपने भृकुटी-संकेत से हमें कुर्सी पर बैठने का आदेश दिया और जब हम उस पर ८ के अंक की तरह दोहरे होकर बैठ गए तो हमारी जाँघ पर गीला तौलिया बिछाया और उस पर नाश्ते की ट्रे जमाकर[1] रख दी। हमने निगाह उठाकर देखा तो उसे झाड़न मुँह में ठूँसे बड़े अदब से हँसते हुए पाया।

हमने पूछा, "हँस क्यों रहे हो?"

कहने लगा "वह तो मैनेजर साब हँस रहे थे। बोलते थे, हमको लगता है कि कराची का पसिंजर बटेर को तिलेर समझकर नहीं खाता!"

हर चीज़ के दो पक्ष हुआ करते हैं। एक अँधेरा। दूसरा अधिक अँधेरा। लेकिन ईमान की बात है इस पक्ष पर हमारी नज़र भी नहीं गई थी। और अब इस ग़लतफ़हमी को मिटाना हमारा दायित्व था। फूली हुई पूरी का लुक़मा प्लेट में वापस रखते हुए हमने रुंधी हुई आवाज़ में इस जालसाज़ पंछी की क़ीमत पूछी।

बोला, "ज़िन्दा या मुर्दा?"

हमने जवाब दिया कि " हम तो इस शहर में अजनबी हैं। फ़िलहाल मुर्दा ही को तरजीह देंगे।"

कहने लगा, "दस आने प्लेट मिलती है। एक प्लेट में तीन बटेरें होती हैं। मगर जनाब के लिए एक ही सिर काफ़ी होगा!"

क़ीमत सुनकर हमारे मुँह में भी पानी भर आया। फिर यह भी था कि कराची में मवेशियों का गोश्त खाते-खाते तबियत उकता गई थी। लिहाज़ा दिल-ही दिल में इरादा कर लिया कि जब तक तक़दीर में मोंटगोमेरी का दाना-पानी है, चिड़ियों के अलावा किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाएँगे। लंच पर भुनी हुई बटेर, चाय के साथ बटेर का चरग़ा[4],सोने से पहले बटेर का सूप। इस रिहायशी तंदूर में जमे हुए हमें चौथा दिन था,

---

[1] संभव है कि कुछ शक्की-स्वभाव पाठकों के मन में यह प्रश्न पैदा हो कि अगर कमरे में मेज़ या स्टूल नहीं था तो बान की चारपाई पर नाश्ता क्यों न कर लिया? शिकायत नहीं सूचना के तौर पर निवेदन है कि जैसे ही मोंटगोमेरी का पहला मुर्ग़ पहली बांग देता, बैरा हमारी पीठ और चारपाई के बीच से बिस्तर एक ही झटके में घसीट लेता। अपने बाज़ुओं के बल और प्रतिदिन के अभ्यास से इस काम में इतनी सफ़ाई और महारत पैदा कर ली थी कि एक दफ़ा सिरहाने खड़े होकर जो बिस्तर घसीटा तो हमारा बनियान तक उतरकर बिस्तर के साथ लिपटकर चला गया और हम खुर्री चारपाई पर केले की तरह छिले हुए पड़े रह गए। फिर चारपाई को पांयती से उठाकर हमें सिर के बल फिसलाते हुए कहने लगा, "साब! फ़र्नीचर खाली करो!" वजह यह कि इस फ़र्नीचर पर सारे दिन "प्रस्तुत होटल के प्रोप्राइटर एंड मैनेजर" का दरबार लगा रहता था। एक दिन हमने इस बे-आरामी पर पुरज़ोर आपत्ति जताई तो होटल के क़ानूनों व नियमों की पेन्सिल से लिखी हुई एक प्रति हमें दिखाई गई, जिसके मुखपृष्ठ पर "प्रस्तुत होटल की दंड संहिता" लिखा हुआ था। उसकी धारा 9 के अनुसार फ़जिर (भोर) की अज़ान के बाद "पसिंजर" को चारपाई पर सोने का हक़ नहीं था। अलबत्ता मरणासन्न मरीज़, प्रसूता और यहूदियों व ईसाइयों पर यह धारा नहीं लागू होती थी। लेकिन आगे चलकर धारा 28 (ब) ने उनसे भी ये विशेषाधिकार छीन लिए थे। उसके अनुसार प्रसूता और मरणासन्न मरीज़ को प्रसव और मृत्यु से तीन दिन पहले तक होटल में आने की अनुमति नहीं थी। "उलंघन करने वालों को बैरों के हवाले कर दिया जाएगा।" (ले.)

और तीन दिन से यही अलल्ले- तलल्ले थे। चौथी सुबह हम जाँघों पर तौलिया और तौलिये पर ट्रे रखे तली हुई बटेर से नाश्ता कर रहे थे कि बैरे ने झाड़न फिर मुँह में ठूँस ली।

हमने चमककर पूछा, "अब क्या बात है?"

कहने लगा, "कुछ नहीं। मैनेजर साब हँस रहे थे। बोलते थे कमरा नम्बर 1 के हाथ बटेर लग गई है!"

हमने व्यंग्य से तंदूर की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा, "तुम्हारे प्रस्तुत होटल में और कौन सा मन्न-व-सलवा[5] उतरता है?"

बोला, "हराम गोश्त (सूअर) के अलावा दुनिया भर की डिश मिलती है। जो चाहें ऑर्डर करें जनाब! ——— आलू-मटर, आलू- गोभी, आलू-मेथी, आलू-गोश, आलू-मच्छी, आलू-बिरयानी, और खुदा तुम्हारा भला करे, ——— आलू-कोफ़्ता, आलू- बड़ियाँ, आलू-समोसा, आलू का रायता, आलू का भुरता, आलू-कीमाँ(आलू-क़ीमाँ) ....."

हमने रोककर पूछा, "और स्वीट-डिश?"

बोला, "आलू की खीर।"

हमने कहा, "भले आदमी! तुमने तो आलू का पहाड़ा सुना दिया। तुम्हारे होटल में कोई ऐसी डिश भी है जिसमें आलू का नाम न आये?"

विजयपूर्ण-मुस्कान के साथ फ़रमाया, "क्यों नहीं! पोटेटो कटलेट! हाज़िर करूँ जनाब?"

क़िस्सा दरअसल यह था कि एक साल पहले प्रस्तुत होटल के मालिक ने हेड-कांस्टेबल के पद से निवृत्त होकर कृषि की तरफ़ तवज्जो फ़रमाई। और ज़मीन से भी उन्ही हथकंडों से सोना उगलवाना चाहा। मगर हुआ यह कि आलू की काश्त में पचीस साल की बुद्धि से जमा की हुई रिश्वत ही नहीं, बल्कि पेंशन और प्रोविडेंट फ़ण्ड भी डूब गए।

ज़मीं खा गई बेईमाँ कैसे-कैसे

बचाए हुए आलुओं से होटल के धंधे का डोल डाला। जिन्हें अब उसके बेहतरीन दोस्त भी ताज़ा नहीं कह सकते थे। सुना है बटेर भी उसी ज़माने में पास-पड़ोस के खेतों से पकड़ लिए थे।'

आलू की भर्त्सना में संवाद

"मिर्ज़ा, यह बटेरनामा अपनी जगह, मगर इस सवाल का जवाब अभी नहीं मिला कि तुम आलू क्यों नहीं खाते?" हमने फिर वही सवाल किया।

"नहीं साहब! आलू खाने से आदमी आलू जैसा हो जाता है। कोई अंग्रेज़[1] औरत जिसे अपना "फ़िगर" और भविष्य ज़रा भी प्यारा है, आलू को छूती तक नहीं। सामने स्विमिंग पूल में पैर लटकाए यह मेम जो मिस्र का बाज़ार खोले बैठी है, उसे तुम आलू की एक हवाई (कतरन) भी खिला दो तो बन्दा इसी कुंड में डूब मरने को

[1] अंग्रेज़: मिर्ज़ा की आदत है कि तमाम गोरी चमड़ी के विदेशियों को अंग्रेज़ कहते हैं। मसलन अमरीका के अंग्रेज़, जर्मनी के अंग्रेज़, हद यह कि इंगलिस्तान के अंग्रेज़। (ले.)

तैयार है। अगर यह कॉफ़ी में चीनी के चार दाने भी डालती है, या कोई इसे मीठी नज़र से भी देख ले, तो उसकी कैलोरीज़ का हिसाब अपनी धोबी की कॉपी में रखती है।" उन्होंने जवाब दिया।

"मिर्ज़ा, क्या मेमें भी धोबी की कॉपी रखती हैं?"

"हाँ! इनमें जो कपड़े पहनती हैं, वो रखती हैं!"

हमारी ज्ञान पिपासा बढ़ती देखकर मिर्ज़ा ने आलू की भर्त्सना में दलीलों और दृष्टान्तों का तूमार बाँध दिया। जहाँ कहीं तर्क के टाट में ज़रा सा सूराख़ भी नज़र आया, वहाँ मख़मली मिसाल का बड़ा सा पैवंद इस तरह लगाया कि जी चाहता था कि कुछ और सूराख़ होते।

कहने लगे, "कर्नल शेख़ कल ही यूरोप से लौटे हैं। कह रहे थे कि यूरोप की और हमारी औरतों में बड़ा फ़र्क़ है। यूरोप में जो लड़की दूर से सत्तरह बरस की मालूम होती है वह क़रीब पहुँचकर सत्तर बरस की निकलती है और हमारे यहाँ जो महिला दूर से सत्तर बरस की दिखलाई पड़ती है वह निकट आने पर सत्तरह बरस की निकलती है! मगर यह वज़ादारी (रख-रखाव) इंगलिस्तान में ही देखी कि जो उम्र दूर से नज़र आती है वही पास से। अतः कमर-कमर तक बालों वाली जो लड़की दूर से उन्नीस साल की नज़र आती है वह पास जाने पर भी उन्नीस ही साल का "हिप्पी" निकलता है! ख़ैर सुनी-सुनाई बातों को छोड़ो। इस मेम का मुक़ाबला अपने यहाँ की आलूख़ोर औरतों से करो। उधर फ़ानूस के नीचे, सुर्ख़ साड़ी में जो मोहतरमा लेटर-बॉक्स बनी अकेले-अकेले गपा-गप बीफ़स्टीक और आलू उड़ा रही हैं। अमाँ! गँवारों की तरह ऊँगली से इशारा मत करो। हाँ! हाँ! वही। अरे साहब! क्या चीज़ थी! लगता था एक अप्सरा सीधी अजंता की गुफाओं से चली आ रही है, और क्या फ़िगर था। कहते हुए ज़बान सौ-सौ बल खाती है।

चलती तो यूँ क़दम रखती थी दिन जैसे किसी के फिरते हैं

पहले-पहल मार्च 1951 में देखा था। वह सुबह याद आती है तो कोई दिल पर दस्तक सी देने लगता है। और अब? अब तुम्हारी आँखों के सामने है। बारह साल पहले की GO-GO Girl गोश्त के अंबार में कहीं खो गई है। इश्क़ और आलू ने इन हालों को पहुँचा दिया।"

हमने कहा, "मारूँ घुटना फूटे आँख!"

बोले, " अहल-ए-ज़बान (मातृभाषी) के मुहावरे उन्हीं के ख़िलाफ़ अंधा-धुंध इस्तेमाल करने से पहले पूरी बात तो सुन लिया करो। हुमैरा वह आइडियल औरत थी, जिसके सपने हर सेहतमंद आदमी देखता है ——यानी शरीफ़ ख़ानदान, ख़ूबसूरत और आवारा! उर्दू, अंग्रेज़ी, फ़्रेंच और जर्मन फ़र्राटे से बोलती थी, मगर किसी भी भाषा में "न" कहने की क्षमता नहीं रखती थी। हुस्न और जवानी में एकाधिकार नहीं, साझेदारी में विश्वास रखती थी। ये दोनों उम्दा चीज़ें जब से नाम को रह गईं और पलकों के साए गहरे हो चले तो मारे-बाँधे एक शरई शादी भी की। मगर एक महीने के अन्दर ही दूल्हा ने सुहाग के कमरबंद का फंदा गले में डालकर ख़ुदकुशी करली। जा तुझे शादी की कशमकश से आज़ाद किया। फिर तो ऐसा सबक़ सीखा कि इस बेचारी ने शरीयत के तकल्लुफ़ात (औपचारिकताओं) से ख़ुद को कभी तकलीफ़ नहीं पहुँचने दी। साहब! मर्द का क्या है। आजकल मर्द ज़िन्दगी से उकता जाता है तो शादी कर लेता है। और अगर शादीशुदा है तो तलाक़ दे देता

है। लेकिन औरत ज़ात की बात और है। बुराई पर उतारू औरत जब परेशान या शर्मिंदा होती है तो टी.एस. एलियट के कथनानुसार ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड लगाकर अपने जूड़े को मशीनी अंदाज़ में थपथपाते हुए शयनकक्ष में बौराई-बौराई नहीं फिरती, बल्कि खाना खाकर अपना ग़म ग़लत करती है। हुमैरा ने भी मर्द की बेवफ़ाई का मुक़ाबला अपने पेट से किया। तुम खुद देख लो। किस रफ़्तार से आलू के टुकड़े रकाबी से प्लेट और प्लेट से पेट में रख रही है। बस इसी ने सूरत से बेसूरत कर दिया।"

हमने उनका समय और अपनी रही-सही इज़्ज़त बचाने की ख़ातिर उनकी इस "थ्योरी" से झट इत्तिफ़ाक़ कर लिया कि ज़नाना आवारगी की रोकथाम के लिए अक़्द (शादी) और आलू से बेहतर कोई आला (उपकरण) नहीं कि दोनों से बदसूरती और बदसूरती से नेकचलनी ज़ोर पकड़ती है। उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए हमने कहा,

"लेकिन अगर आलू से वाक़ई मोटापा पैदा होता है तो तुम्हारे लिए तो उलटा मुफ़ीद होगा। क्योंकि अगर तुम्हारा वज़न सही मान लिया जाए तो आदर्श मानक के हिसाब से तुम्हारा क़द तीन फ़ीट होना चाहिए। एक दिन तुम्ही ने बताया था कि आस्तीन के लिहाज़ से 17 नम्बर की क़मीज़ तुम्हें फ़िट आती है और कालर के लिहाज़ से 13 नम्बर! "

करिश्मे कार्बोहाइड्रेट के

इसी साल जून में मिर्ज़ा अपने दफ़्तर में अगाथा क्रिस्टी का नया उपन्यास पढ़ते-पढ़ते अचानक बेहोश हो गए। होश आया तो खुद को एक आरामदेह क्लीनिक में कम्पनी के ख़र्च पर शय्याग्रस्त पाया। उन्हें इस बात से सख़्त मायूसी हुई कि जिस मुक़ाम पर उन्हें दिल का तेज़ दर्द महसूस हुआ था, दिल उससे बित्ता भर दूर निकला। डॉक्टर ने वहम दूर करने के उद्देश्य से उंगली रखकर बताया कि दिल यहाँ नहीं, यहाँ होता है। उसके बाद उन्हें दिल का दर्द दिल ही में महसूस होने लगा!

जैसे ही उनके कमरे से "मरीज़ से मुलाक़ात मना है" की तख़्ती हटी, हम ज़ीनिया का गुलदस्ता लेकर अयादत (मिज़ाज-पुरसी) को पहुँचे। दोनों एक दूसरे की शकल देख-देखकर खूब रोए। नर्स ने आकर दोनों को चुप कराया और हमें अलग ले जाकर चेतावनी दी कि इस अस्पताल में बीमार-पुरसी करने वालों को रोना और कराहना मना है । हमने फ़ौरन खुद पर बहुत ज़्यादा प्रफुल्लता तारी करके मिर्ज़ा को घबराने से मना किया और नसीहत दी कि मरीज़ को अल्लाह की रहमत से मायूस नहीं होना चाहिए। वह चाहे तो तिनके में जान डाल दे। हमारी नसीहत का वांछित बल्कि उससे भी अधिक असर हुआ।

"तुम क्यों रोते हो पगले?" हमने उनके माथे पर हाथ रखते हुए कहा।

"यूँ ही ख़याल आ गया कि अगर तुम मर गए तो मेरी अयादत को कौन आया करेगा!" मिर्ज़ा ने अपने आँसू नर्स के रूमाल में सुरक्षति करते हुए रोने की वजह बयान की।

रोग की असल वजह डॉक्टरों के विचार से चिन्ताओं की अधिकता थी, जिसे मिर्ज़ा की शब्दचतुर ज़बान ने कामों की अधिकता बना दिया। ख़ैर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मिर्ज़ा चाय के साथ आलू "चिप्स" उड़ा रहे थे।

हमने कहा, "मिर्ज़ा! तुम आज रंगे हाथों पकड़े गए।"

बोले (और ऐसी आवाज़ में बोले जैसे किसी अंधे कुँए के पेंदे से बोल रहे हैं), "डॉक्टर कहते हैं कि तुम्हारा वज़न बहुत कम है। तुम्हें आलू और कई ऐसी चीज़ें खूब खानी चाहिएँ जिनमें 'स्टार्च' और कार्बोहाइड्रेट ज़्यादा हो। साहब! आलू एक वरदान है, कम-से-कम विज्ञान के अनुसार!"

हमने कहा, "तो फिर दबादब आलू खाकर ही स्वस्थ हो जाओ।"

फ़रमाया, "स्वस्थ तो मुझे वैसे भी होना ही पड़ेगा। इसलिए कि ये नर्सें इतनी बदसूरत हैं कि कोई आदमी जो अपने मुँह पर आँखें रखता है, यहाँ ज़्यादा अरसे पड़ा नहीं रह सकता!"

वो नए गिले वो शिकायतें, वो मज़े-मज़े की हिकायतें

क्लीनिक्स से निकलते ही मिर्ज़ा ने अपनी तोपों की दिशा फेर दी। निंदा-रस के रसिया के निशदिन अब आलू की महिमा के बखान में बसर होने लगे। एक समय था कि वियतनाम पर अमरीकी बमबारी की ख़बरें पढ़कर मिर्ज़ा पछतावा करते कि कोलम्बस ने अमरीका की खोज करके बड़ी नादानी की। मगर अब प्यार में आते तो आलू की गदराई हुई गोलाइयों पर हाथ फेरते हुए फ़रमाते,

"साहब! कोलम्बस नरक में नहीं जाएगा। उसे वापस अमरीका भेज दिया जाएगा! सभ्य दुनिया पर अमरीका के दो अहसान हैं: तम्बाकू और आलू। सो तम्बाकू का बेड़ा तो सरतान (कैंसर) ने ग़र्क़ कर दिया। मगर आलू का भविष्य बेहद शानदार है। जो देश जितना दरिद्र होगा, उतना ही आलू और धर्म का चलन अधिक होगा।"

और कभी ऐसा भी होता कि विनोदपूर्ण विरोधी वैज्ञानिक हथियारों से परास्त नहीं हुआ तो शायरी की मार से वहीं ढेर कर देते।

"साहब! ज्यों-ज्यों वक़्त गुज़रता है, याददाश्त कमज़ोर होती जाती है। पहले अपनी पैदाइश का दिन ज़ेहन से उतरा। फिर महीना। और अब तो सन भी याद नहीं रहता। बेगम या किसी बदख़्वाह (अशुभचिंतक) से पूछना पड़ता है। अक्सर तुम्हारे चुटकले तुम्हें ही सुनाने बैठ जाता हूँ। वह तो जब तुम पेट पकड़-पकड़कर हँसने लगते हो तो शक होता है कि चुटकला तुम्हारा ही होगा। बेगम अक्सर कहती हैं कि कॉकटेल पार्टियों और डांस में तुम्हें यह तक याद नहीं रहता कि तुम्हारी शादी हो चुकी है! ग़रज़ कि याददाश्त बिल्कुल चौपट है। अब यह आलू का चमत्कार नहीं तो और क्या है कि आज भी किसी बच्चे के हाथ में भूभल में सिंका हुआ आलू नज़र आ जाए तो उसकी मानूस (जानी-पहचानी) महक से बचपन की एक-एक घटना मन में ताज़ा हो जाती है। मैं टकटकी बाँधकर उसे देखता हूँ उससे फूटती हुई सोंधी भाप के परे एक भूली-बिसरी सूरत उभरती है। धूल से अटे बालों के पीछे शरारत से चमकती आँखें। कुरता बटनों से मुक्त। गले में गुलेल। नाखुन दाँतों से

कुतरे हुए। पतंग उड़ाने वाली ऊँगली पर डोर की रक्तरंजित रेखा। बैरी समय हौले-हौले अपनी केंचुलियाँ उतारता चला जाता है। और मैं नंगे पाँव तितलियों के पीछे दौड़ता, रंगबिरंगे बादलों में रेज़गारी के पहाड़, परियों और आग उगलते अजगरों को बनते बिगड़ते देखता ——— खड़ा रह जाता हूँ ....."

"यहाँ तक कि आलू ख़त्म हो जाता है!" हमने साबुन के बुलबुले पर फूँक मारी।

संभले। समय के पहिये को अपने बचपन के पीछे दौड़ाते-दौड़ाते अचानक रोका। और गाली देने के लिए गला साफ़ करते हुए फ़रमाया,

"..... खुदा जाने हुकूमत आलू को क़ानून की ताक़त से राष्ट्रीय भोजन बनाने से क्यों डरती है। सस्ता इतना कि आज तक किसी सेठ को इसमें मिलावट करने का ख़याल नहीं आया। 'स्कैंडल' की तरह स्वादिष्ट और सुपाच्य! विटामिन से भरपूर, अच्छा स्वाद, सूफ़ियाना रंग, छिलका ज़नाना लिबास की तरह। यानी सिर्फ़ नाम को!

साफ़ इधर से नज़र आता है उधर का पहलू"

अपने हाथ अपना मुँह

मिर्ज़ा पर अब यह झख सवार थी कि अगर संदल (चन्दन) का घिसना और लगाना सिर दर्द के लिए फ़ायदेमंद हैं तो उसे उगाना कहीं ज़्यादा फ़ायदेमंद होना चाहिए। चिकित्सा और कृषि की जिन काँटों भरी पगडंडियों को मस्ती में झूमते-झामते तय करके वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे, उसको दोहराया जाए तो चिकित्साशास्त्र पर एक पूरी किताब तैयार हो सकती है। चूँकि हम वैद्यों व हकीमों की लगी-लगाई रोज़ी पर हाथ डालना नहीं चाहते, इसलिए दो-तीन चिंगारियाँ छोड़कर दूर खड़े हो जाएँगे।

एक दिन हमसे पूछा, "बचपन में खटमिट्ठे बेर, मेरा मतलब है झरबेरी के बेर खाए हैं?"

अर्ज़ किया, " जी हाँ! हज़ार बार। और उतनी ही बार खाँसी से परेशान हुआ हूँ।"

फ़रमाया, "बस यही फ़र्क़ है, ख़रीद के खाने में और अपने हाथ से तोड़के खाने में। तजुर्बे की बात बताता हूँ। बेर तोड़ते वक़्त ऊँगली में काँटा लग जाए और खून की बूँद पोर पर थरथराने लगे तो आसपास की झाड़ियों के तमाम बेर मीठे हो जाते हैं!"

"साइंटिफ़िक मस्तिष्क में यह बात नहीं आती" हमने कहा।

हमारा यह कहना था कि अधिक उबले हुए आलू की तरह तड़कते बिखरते चले गए।

कहने लगे, "साहब! कुछ हकीम यह करते हैं कि जिसका हाज़मा कमज़ोर हो उसे ओझड़ी खिलाते हैं। जिसके गुर्दे ठीक से काम न करते हों उन्हें गुर्दे। और जो जिगर की कमज़ोरी से परेशान हो उसे कलेजी। अगर मैं हकीम होता तो तुम्हें भेजा ही भेजा खिलाता!"

प्रस्तुत लेखक के कमज़ोर अंग की निशानदेही करने के बाद फ़रमाया, "अब आलू खुद उगाने की साइंटिफ़िक वजह भी सुन लो। पिछले साल उतरती बरसात की बात है। मैं टोबा टेक सिंह में काले तीतर की तलाश में कच्चे में बहुत दूर निकल गया। मगर एक तीतर नज़र न आया। "गाइड" ने यह बताया कि शिकार

के लिए आपके पास डिप्टी कमिश्नर का परमिट नहीं है। वापसी में रात हो गई और हमारी 1945 मॉडल जीप पर दमे का दौरा पड़ा। चंद लम्हों बाद वह जर्जर वृद्धा एक गढ़े में आख़िरी हिचकी लेकर ख़ामोश हो गई मगर अपने पिंजर में हमारी आत्मा के पंछी को फड़फड़ाता छोड़ गई। हम स्टीयरिंग पर हाथ रखे-रखे दिल ही दिल में ख़ुदा का शुक्र अदा कर रहे थे कि ख़ुदा की रहमत से कार गढ़े में गिरी, वर्ना गढ़े की जगह कुआँ होता तो इस वक़्त ख़ुदा का शुक्र कौन अदा करता? *न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता*! हमारे कर्ज़दाताओं पर क्या गुज़रती? हमारे साथ रक़म के डूबने पर उन्हें कैसे सब्र आता कि अभी तो तमस्सुक (ऋणपत्र) की स्याही भी सूखी नहीं थी? हम अभी उनके और उनके छोटे-छोटे बच्चों के सिरों पर हाथ फेर ही रहे थे कि एक किसान बकरी का नवजात शिशु गर्दन पर मफ़लर की तरह डाले उधर से गुज़रा। हमने आवाज़ देकर बुलाया। अभी हम इतनी ही भूमिका बाँधने पाए थे कि 'हम कराची से आए हैं और काले तीतर की तलाश में थे' कि वह गढ़े की तरफ़ इशारा करके कहने लगा कि 'तहसील टोबा टेक सिंह में तीतर पानी में नहीं रहते।' हमारे गाइड ने हमारी फ़ौरी ज़रूरतों की तर्जुमानी की तो वह ऐसा पसीजा कि अपनी बैलगाड़ी लाने और उसे जीप में जोतकर अपने घर ले जाने के लिए आग्रह करने लगा। और वह भी बिला मुआवज़ा! साहब! अंधा क्या चाहे?....."

"दो आँखें!" हमने झट लुक़मा दिया।

"ग़लत! बिल्कुल ग़लत! अगर उसकी बुद्धि भी नेत्रज्योति के साथ लुप्त नहीं हुई है तो अंधा दो आँखें नहीं चाहता, एक लाठी चाहता है!" मिर्ज़ा ने मुहावरे में भी संशोधन कर दिया।

हम हुंकारा भरते रहे, कहानी जारी रही। "थोड़ी देर बाद वह बैलगाड़ी ले आया जिसके बैल अपनी जवानी को बहुत पीछे छोड़ आए थे। अदवाइन की रस्सी से जीप बाँधते हुए उसने हमें बैलगाड़ी में अपनी बग़ल में अगली सीट की पेशकश की। और डेढ़-दो मील दूर किसी काल्पनिक बिंदु की ओर संकेत करते हुए तसल्ली देने लगाः

"ओ जेड़ी नवीं लालटेन बल्दी पई ए न वो ही मेरा घार ओवे[1]।"

घर पहुँचते ही उसने अपनी पगड़ी उतारकर चारपाई के सेरवे (सिरहाने की पाटी) वाले पाए को पहना दी। मुँह पर पानी के छपके दिए और गीले हाथ सफ़ेद बकरी की पीठ से पोंछे। बरसात की चाँदनी में उसके कुरते पर बड़ा सा पैवंद दूर से नज़र आ रहा था। और जब थूनी पर लटकी हुई नई लालटेन की लौ भड़की तो उस पैवंद में लगा हुआ एक और पैवंद भी नज़र आने लगा जिसके टाँके अभी उसकी मुस्कराहट की तरह उजले थे। उसकी घर वाली ने खुर्री चारपाई पर खाना चुनकर ठंडे मीठे पानी के दो धातु के गिलास पाटी पर बान छितराकर जमा दिए। मेज़बान के पुरज़ोर आग्रह और भूख के उससे भी ज़्यादा पुरज़ोर तक़ाज़े से मजबूर होकर जो हमने भकोसना शुरू किया है तो यक़ीन जानो पेट भर गया मगर जी नहीं भरा। लार निगलते हुए हमने पूछा 'चौधरी! इससे मज़ेदार आलू हमने आज तक नहीं खाया। क्या तरीक़ा है पकाने का?'

[1] वह जहाँ नई लालटेन जल रही है न, वही मेरा घर है। (ले.)

बोला 'बादशाहो! पहले ते इक कल्ले ज़मीन विच पंज मन अमरीका दी खाद पाओ। फ़ेर.....'"[1]

क़िस्सा आलू की काश्त का

बात अगर अब भी गले से नहीं उतरी तो "खुद उगाओ, खुद खाओ" कड़ी की तीसरी दास्तान सुनिए जिसका पाप-पुण्य मिर्ज़ा की गर्दन पर है कि वही इसके फ़िरदौसी (कथावाचक) हैं और वही रुस्तम (हीरो)। दास्तान का आग़ाज़ यूँ होता हैः

"साहब! बाज़ार से सड़े-बुसे आलू ख़रीदकर खाने से तो यह बेहतर है कि आदमी चने भसकता फिरे। परसों शाम हम खुद आलू ख़रीदने गए। शुबराती की दुकान से। अरे साहब! वही अपना शुबराती जिसने चौदह पंद्रह साल से वह साइनबोर्ड लगा रखा हैः

इस दुकान का मालिक शुबराती मुहाजिर
(अगर कोई दुकान पर दावा करे तो झूठा है)
बमुक़ामः मौज़ा काठ, बड़ी जामा मस्जिद के पीछे
पोस्ट-ऑफ़िसः क़स्बा बाग़पत, ज़िला मेरठ
वर्तमान में कराची निवासी

हमने एक आलू दिखाते हुए कहा "मियाँ शुबराती! वर्तमान में कराची निवासी! तुम्हारे आलू तो पिलपिले हैं। ख़राब लगते हैं।"

बोला, "बाऊ जी! खराब निकलें तो काला नाग (उसके गधे का नाम) के मूत से मूँछ मुंडवा देना। दरअसल ये पहाड़ी आलू हैं।"

हमने कहा, "हमें तो कराची से पाँच सौ मील तक कोई पहाड़ नक़्शे में नज़र नहीं आता।"

बोला, "बाऊ जी! तुम्हारे नश्के में और कौन सी फल-फलारी कराँची में नजर आवे है? ये रुपे छटाँक का साँची पान जो तुम्हारे गुलाम के कल्ले में बताशे की तरियों घुल रिया है, बमुकाम बंगाल से आ रिया है। हियाँ क्या दम-दरूद रक्खा है। हालियत तो यह है बाऊ जी! कराँची में मिट्टी तलक मलेर से आवे है। किस वास्ते कि ढाका से मंगा के घाँस लगावेंगे। जवानी कसम बाऊ जी! पिशावर की चौक यादगार में मुर्गा अज़ान देवे है तो कहीं जाके कराँची वालों को सुबह अंडा नसीब होवे है!"

और एक स्वाभिमानी पुरुष ने चमनिस्तान-ए-कराची के हृदय यानी हाउसिंग सोसाइटी में आलू की काश्त शुरू कर दी। अगरचे फ़िलहाल पाँच मन अमरीकी खाद का इंतज़ाम न हो सका, लेकिन मिर्ज़ा का जोश-

[1] पहले एक एकड़ ज़मीन में पाँच मन अमरीकी खाद डालो फिर ..... (उस ज़माने में रासायनिक खाद अमरीका से आती थी।) (ले.)

ए-जुनून उन्हें उस मुक़ाम तक पहुँचा चुका था, जहाँ खाद तो खाद, वे बिना ज़मीन के भी काश्त करने का जिगरा रखते थे!

मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग और खेती-बाड़ी! हमारा ख़याल है कि सारा खेत एयर-कंडीशन कर दिया जाए और ट्रैक्टर में एक रॉकिंग चेयर (झूला-कुर्सी) डाल दी जाए तो मिर्ज़ा शायद दो-चार घंटे के लिए काश्तकारी का पेशा इख़्तियार करलें, जिसके बारे में उनका सम्पूर्ण ज्ञान बस इतना है कि उन्होंने सिनेमा के परदे पर क्लीन शेव ऐक्टरों को छाती पर नक़ली बाल चिपकाए, स्टूडियो के सूरज की धूप में, सिगरेट की पन्नी चढ़ी हुई दरांतियों से बाजरे के खेत में से मकई के भुट्टे काटते देखा है। यहाँ यह बताना शायद बेमौक़ा न होगा कि इससे चंद साल पहले मिर्ज़ा बाग़बानी का एक अत्यंत दुर्लभ और उतना ही असफल परीक्षण करके हमें एक लेख का कच्चा माल उपलब्ध करा चुके थे। उन्हें एक दिन अपने कोट का नंगा कॉलर देखकर अचानक अंतर्बोध हुआ कि होने को तो घर में अल्लाह का दिया सब कुछ है सिवाय रूपये के, लेकिन अगर बाग़ में गुलाब के गमले नहीं तो जीना फ़िज़ूल है। उन्हें ज़िंदगी में अचानक एक ज़बरदस्त रिक्तता महसूस होने लगी, जिसे सिर्फ़ अमरीकी खाद से भरा जा सकता था।

फिर क्या था। कोयटा से पी.आई.ए.के ज़रिए सफ़ेद गुलाब की क़लमें मँगाई गईं। गमलों को खौलते हुए पानी और फ़िनाइल से "डिसइन्फ़ेक्ट" किया गया। फिर कोयटा के नाज़ुक व नायाब गुलाब को कराची की दीमक और कीड़ों से सुरक्षित रखने के लिए बदचलन बकरी की मेंगनी (लेंड़ी) गरम खाद में उतनी ही अमरीकी खाद और अमरीकी खाद में उतनी ही मात्रा में डी.डी.टी. पाउडर मिलाया गया। उबले हुए पानी से सुबह व शाम सिंचाई की गई। और यह सच बात है कि उन गमलों में कभी कोई कीड़ा नज़र नहीं आया। और न गुलाब!

प्रोफ़ेसर क़ाज़ी अब्दुलक़ुद्दूस कुछ ग़लत तो नहीं कहते कि मिर्ज़ा हिमाक़त भी करते हैं तो इस क़दर "ओरिजिनल" कि ख़ुदा की क़सम बिल्कुल इल्हामी (ईश्वरीय प्रेरणा) मालूम होती है!

छुपा दस्त-ए-हिम्मत में दस्त-ए-क़ज़ा है[6]

अब जो आलू की काश्त की सनक सिर में समाई तो डेढ़ दो हफ़्ते इस विषय पर रिसर्च होती रही कि आलू बुख़ारे की तरह आलू के भी बीज होते हैं, या कोयटा के गुलाब की तरह आलू की भी टहनी काटकर साफ़-सुथरे गमले में गाड़ दी जाती है। और यह कि आलू पटसन के समान घुटनों-घुटनों पानी माँगता है या अख़रोट की तरह बिना मेहनत के पीढ़ी-दर-पीढ़ी फल देता रहेगा। शोध के दौरान एक नुक्ता कहीं से यह भी निकल आया कि बैंगन की तरह आलू भी डाल-डाल पर लटकेंगे या तुरई की लता की तरह पड़ोसी की दीवार पर पड़े रहेंगे। प्रोफ़ेसर क़ाज़ी अब्दुलक़ुद्दूस ने तो यह मुद्दा भी उठाया कि झगड़े-फ़साद से बचने के लिए यह मान लिया जाए कि आलू वाक़ई ज़मीन से उगते हैं तो डंठल का निशान कैसे मिटाया जाता है?

आख़िरकार मिर्ज़ा ने आलू की काश्त के लिए ज़मीन यानी अपना "लॉन" (जिसकी अफ़्रीक़ी घास की हरियाली ऐसी थी कि सिगरेट की राख झाड़ते हुए दिल दुखता था) तैयार किया। इस कृषि परीक्षण के दौरान

जहाँ-जहाँ जूनून ने मार्गदर्शन किया और बुद्धि मूकदर्शक रही, दफ़्तर के चपरासियों, अपने पालतू ख़रगोश और मोहल्ले के लौंडे-लपाड़ियों की मदद से दो ही दिन में सारा लॉन खोद फेंका। बल्कि उसके बाद भी यह काम जारी रखा। यहाँ तक कि दूसरी मंज़िल के किरायदारों ने हाथ पाँव जोड़कर खुदाई रुकवाई, इसलिए कि मकान की नींव नज़र आने लगी थी।

स + क x मोज़ा = कमर

32

कोयटा के गुलाब की तरह आलू को भी कराची की नज़र खा गई। मगर पंजवक़्ता (पाँच वक़्त) निराई, गुड़ाई और खुदाई से रग-पुट्ठों में जो चुस्ती और तबियत में जो चौंचाली आ गई थी, वे उसे आलू का चमत्कार समझते थे। अब की दफ़ा जो लंच पर हमें होटल इंटरकॉन्टिनेंटल के चाँदनी लाउन्ज में ले गए तो हमने देखा कि बुफ़े मेज़ पर सिवाय उन रासायनिक परीक्षणों के जो यूरोपियन बावर्चियों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी आलू पर किये थे और कुछ न था —— आलू-मुसल्लम, आलू दो-टुकड़े, आलू-कोफ़्ता, आलू-छिलकेदार, आलू-तला, आलू जला-भुना, आलू-बिरियाँ (भुना), आलू नीम-बिरियाँ (अर्ध-भुना), बल्कि कहीं-कहीं बिल्कुल उरियाँ (नग्न)!

"मिर्ज़ा! यह क्या?"

""ट्रिपल बी (Busy Businessmen's Buffet)।"

"या अल्लाह! कराची के करोड़पति यह खाते हैं! मगर हमने तो इनकम-टैक्स की चोरी भी नहीं की। फिर यह सज़ा क्यों? भूखा ही मारना था तो हमें गज़ भर की टाई बंधवाकर नौ मंज़िलें लांघते-फलांगते यहाँ काहे को लाए? नीचे ही नक़द पैसे देकर विदा कर देते।"

"हमारी संगत में रहते एक मुद्दत गुज़री, मगर रहे जंगली के जंगली! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि 'फ़ाइव-स्टार' होटलों में क़ीमत खाने की नहीं दी जाती, उस रूमानी फ़िज़ा की दी जाती है, जहाँ आप दूसरे इज़्ज़तदारों को अपनी तरह भूखा मरते देखते हैं। बिल में जो रक़म दर्ज होती है वह बिसांदे गोश्त और उबले चुक़न्दर की क़ीमत नहीं होती। दरअसल उसमें घर से भागने का जुर्माना, दूसरी मेज़ों पर बैठी हुई महिलाओं के फ़्रेंच सेंट लगाने का तावान, खिलखिलाती हुई वेट्रेस के टूथपेस्ट की क़ीमत बल्कि उसका पूरा नान-नफ़क़ा (संभरण) शामिल करना पड़ता है, जब जाकर एक बिल बनता है। और जहाँ तक लज़्ज़त का ताल्लुक़ है तो साहब! हर रात आँगन में उतरने वाले मन्न व सलवा के मुक़ाबले में बाहर की प्याज़ की गंठी मज़ा दे जाती है। वर्ना देखा जाए तो चाय की प्याली घर की अंगीठी पर "चिराग़-तले"[7] जलाकर भी बनाई जा सकती है और—— और साहब! दस-दस रूपे के नोट जलाकर भी! जैसा हॉक्स-बे की "हट" में तुम्हारे उस बम्बइया सेठ ने किया था! मिस्री बेली डांसर की ख़ातिर।"

"मगर वह तो अच्छी ख़ासी PLUMP थी।"

"साहब! मिस्री तो इसी पर जान देते हैं। जभी तो शाह फ़ारूक़ मोटे जिस्म वाली रखैलें इस तरह इकट्ठी किया करता था जैसे बच्चे डाक के टिकट जमा करते हैं!"

बहस और हमें इस ढलान पर लाकर मिर्ज़ा ने सरापा के तीन अंकों (मसलन 37-24-35) की जाँच-पड़ताल करने का स्वनिर्मित फ़ॉर्मूला पेश किया जो बिना घटाए-बढ़ाए पाठकों की भेंट है:

सुन्दरी के सीने के नाप में कूल्हों का नाप जोड़ो। योगफल को अपने (साफ़) मोज़े के नम्बर से गुणा करो। फिर इस गुणनफल को 32 से विभाजित कर दो। जो उत्तर आये वह कमर की आदर्श नाप होगी। अब अगर कमर का फेर इससे ज़्यादा निकले तो आलू से परहेज़ ज़रूरी है। और अगर उससे कम है तो आलू खिला-खिलाकर जिस्म को फ़ॉर्मूले के साँचे में ढाला जा सकता है।

होटल की बिल की पृष्ठ पर उन्होंने बॉलपॉइंट क़लम से मार्लिन मुनरो, जीना लोलोब्रिजिडा, एलिज़ाबेथ टेलर, सोफ़िया लॉरेन और परी समान चुनिन्दा सुंदरियों को एक-एक करके अपने ग्यारह नम्बर के मोज़े में ऐसा उतारा कि हम भौंचक्के रह गए। इसमें आपको झूठ या आलंकारिता की ज़रा भी झलक नज़र आए तो दो चार अभ्यास-प्रश्न निकालकर आप भी अपनी जान पहचान की हसीनों का इम्तेहान कर लीजिए। हम तो इसे महारानी विक्टोरिया के बुत, कोका-कोला की बोतल और ख़ुद पर आज़माकर अपना इत्मीनान कर चुके हैं।

उसकी रातों की तपन

हमें डेढ़ महीने के लिए काम से ढाका जाना पड़ा और मिर्ज़ा से मुलाक़ातों का सिलसिला रुक गया। पत्राचार की मिर्ज़ा को सहार नहीं। जैसे ही हम वापस आए, अनन्नास और मुंशीगंज के केलों से लदे-फंदे मिर्ज़ा के यहाँ पहुँचे।

हमने कहा, "अस्सलाम अलैकुम!"

जवाब मिला, "फल अन्दर पहुँचवा दो। वालेकुम अस्सलाम!"

ग़ौर से उनकी सूरत देखी तो दिल पर चोट सी लगी।

"यह क्या हाल बना लिया है तुमने?"

"हमें जी भरकर देख लो। फिर इस सूरत को तरसोगे। भूख ख़त्म। दवाओं पर गुज़ारा है। दिन भर में तीन अंगूर खा पाता हूँ। वह भी छिलका उतारके। खाने के नाम से हौल उठता है। दिल बैठा जाता है। हर वक़्त एक बेचैनी सी रहती है। हर चेहरा उदास-उदास, हर चीज़ धुआँ-धुआँ। यह हौंकता सन्नाटा, यह चैत की उदास चाँदनी, यह....."

"मिर्ज़ा हम तुम्हें रोमैंटिक होने से रोक तो नहीं सकते, लेकिन यह महीना चैत का नहीं है।"

"चैत न सही, चैत जैसा ज़रूर है, ज़ालिम। तुम तो एक हिन्दू लड़की से दिल भी लगा चुके हो। तुम्ही बताओ, यह कौन से महीने का चाँद है?" मिर्ज़ा ने सवाल किया।

"इसी महीने का मालूम होता है," हमने झिझकते हुए जवाब दिया।

"हमें भी ऐसा ही लगता है। साहब! अजीब आलम है। काम में ज़रा जी नहीं लगता। और बेकारी से भी वहशत होती है। ज़ेहन परागंदा (परेशान), बल्कि सच पूछो तो सिर्फ़ गन्दा। तारों भरे आसमान के नीचे रात-

रात भर आँखें फाड़े तुम्हारी हिमाक़तें गिनता रहता हूँ। तन्हाई से दिल घबराता है। और लोगों से मिलता हूँ तो जी चाहता है मुँह नोच लू, और साहब!

एक दो का ज़िक्र क्या, सारे के सारे नोच लूँ"

"मिर्ज़ा, हो न हो, ये इश्क़ के लक्षण हैं!"

"ठीक। लेकिन जिस सज्जन में ये लक्षण हैं, अगर उन पर चालीस महावटें पड़ चुकी हों, तो ये इश्क़ के नहीं 'अल्सर' के लक्षण हैं। खाना खाते ही महसूस होता है जैसे किसी ने हलक़ से लेकर पेट तक तेज़ाब की फुरेरी फेर दी। इधर खाया, उधर पेट फूलकर मशक हुआ। हँसी का रुख़ भी अन्दर की तरफ़ हो गया है। सारी शरारत आलू की है। पेट में 'एसिड' बहुत बनने लगा है। 'पेप्टिक अल्सर' हो गया है।" उनकी आँखें डबडबा आईं।

"इसमें घबराने की क्या बात है। आजकल किसी को 'हार्टअटैक' या 'अल्सर' न हो तो लोग उस पर तरस खाने लगते हैं कि शायद बेचारा किसी ज़िम्मेदार पद पर नियुक्त नहीं है! मगर तुम तो नौकरी को जूते की नोक पर रखते हो। अपने बॉस से टाँग पे टाँग रखके बात करते हो। फिर यह कैसे हुआ? समय पर सोते हो। समय के बाद उठते हो। दादा के ज़माने की चाँदी की पतीली में उबाले बिना पानी नहीं पीते। वज़ू भी पानी में 'लिस्ट्रीन' मिलाकर करते हो, जिसमें 26 फ़ीसद अल्कोहल होता है। समसामयिक घटनाक्रम से खुद को बेख़बर रखते हो। बातों के सिवा किसी चीज़ में कड़वाहट को क़रीब आने नहीं देते। तेल भी तुम नहीं खाते। दस साल से तो हम खुद देख रहे हैं, मोंटगोमरी का शुद्ध दानेदार घी खा रहे हो।" हमने कहा।

"तुम्हें यक़ीन नहीं आएगा, यह सब उसी मनहूस की शरारत है। अब की दफ़ा जो 'सोने के भस्म से अधिक शक्तिवर्धक घी' का भरा हुआ कनस्तर अपने हाथ से अंगीठी पर तपाया तो मालूम है तह में क्या निकला? तीन-तीन अंगुल आलू की दानेदार लुगदी! जभी तो मैं कहूँ कि मेरा बनियान तो तंग हो गया, मगर वज़न क्यों नहीं बढ़ रहा!" मिर्ज़ा ने आख़िर अपने दस वर्षीय मर्ज़ की जड़ पकड़ ली, जो ज़िला मोंटगोमरी तक फैली हुई थी।

क्या असीरी (क़ैद) है, क्या रिहाई है

पहले मिर्ज़ा को दर्द की ज़रा बर्दाश्त नहीं थी। हमारे सामने की बात है, पहली दफ़ा पेट में दर्द हुआ तो डॉक्टर ने मार्फ़िया का इंजेक्शन तैयार किया। मगर मिर्ज़ा ने घिघियाकर मिन्नतें कीं कि उन्हें पहले क्लोरोफ़ॉर्म सुंघा दिया जाए ताकि इंजेक्शन की तकलीफ़ महसूस न हो! लेकिन अब अपनी बीमारी पर इस तरह इतराने लगे थे जैसे अक्सर ओछे अपनी तंदुरुस्ती पर अकड़ते हैं। हमें उनकी बीमारी से इतनी चिंता नहीं हुई जितनी इस बात से कि उन्हें अपने ही नहीं पराए मर्ज़ में भी उतनी ही लज़्ज़त महसूस होने लगी थी। भांत-भांत की बीमारियों से पीड़ित मरीज़ों से इस तरह कुरेद-कुरेदकर संक्रामक तफ़सीलात पूछते कि रात तक उनके सारे मर्ज़ अपना लेते। इस हद तक कि बुख़ार किसी को चढ़ता, सरसामी बातें वे करते। इस हमदर्दी से भरपूर मिज़ाज-पुरसी के अंदाज़ से मिर्ज़ा ने खुद को प्रसव के सिवा हर तकलीफ़ में गिरफ़्तार कर लिया। घर या दफ़्तर की क़ैद नहीं, न अपने बेगाने का फ़र्क़, हर मुलाक़ाती को अपनी आँतों की गड़बड़ी से आगाह करते और उस

चंचल वात-पीड़ा का शाब्दिक ग्राफ़ बनाते जो हाथ मिलाते समय हाँफने और आँतों की गड़गड़ाहट का कारण थी, फिर दाएँ आँख के पपोटे में "करंट" मारती, सूजे हुए जिगर को छेदती, टली हुई नाभि की तरफ़ बढ़ने लगी थी, कि पिछले पहर अचानक पलटी और पलटकर दिल में बुरे-बुरे विचार पैदा करने लगी। और फिर मिर्ज़ा हर बुरे विचार को इस तरह खोलकर बयान करते कि

मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है

जिन लोगों ने मिर्ज़ा को पहले नहीं देखा था वे कल्पना नहीं कर सकते थे कि यह बीमार मर्द जो फ़ाइलों पर सिर झुकाए, 'अल्सर' की तपक (टीस) मिटाने के लिए हर दूसरे घंटे एक गिलास दूध मुँह बनाकर पी लेता है, यह चार महीने पहले कोफ़्ते में हरी मिर्च भरवाकर खाता था और इससे भी जी नहीं भरता तो शाम को यही कोफ़्ता हरी मिर्च में भरवा देता था। यह अधमुआ मर्द जो बे-मिर्च मसाले के रातिब को "इंग्लिश फ़ूड कहकर सब्र व शुक्र के साथ खा रहा है, यह वही चटोरा है जो चार महीने पहले यह बता सकता था कि सुबह सात बजे से लेकर रात के नौ बजे तक कराची में किस "स्वीट-मीट मर्चेंट" की कड़ाही से उतरती गर्म जलेबी मिल सकती है। हाउसिंग सोसाइटी के कौन से चीनी रेस्तराँ में तले हुए झींगे खाने चाहिएँ जिनका चौगुना बिल बनाते समय रेस्तराँ के मालिक की बेटी इस तरह मुस्कुराती है कि बखुदा रूपया हाथ का मैल मालूम होता है। उन्हें न सिर्फ़ यह पता था कि लाहौर में गहनों की कौन सी दुकान में निहायत नाज़ुक "हीरा-तराश" कलाइयाँ देखने को मिलती हैं, बल्कि यह भी मालूम था कि मोज़ंग में तिक्का कबाब की वह कौन सी दुकान है जिसका हेड ऑफ़िस गुजरांवाला में है। और यह भी कि कड़कड़ाते जाड़ों में रात के दो बजे लालकुर्ती बाज़ार की किस पान की दुकान पर पिंडी के मनचले तरह-तरह के पानों से ज़्यादा उनके रसीले नामों के मज़े लूटने आते हैं। क़िस्साख़्वानी बाज़ार के किस मुछैल हलवाई की दुकान से काली गुलाब जामुन और नाज़िमाबाद की कौन सी चौरंगी के क़रीब गुलाब में बसा हुआ क़लाक़न्द क़र्ज़ पर मिल सकता है[1]। (जानकारी के लिए अर्ज़ है कि मिर्ज़ा नक़द पैसे देकर मिठाई ख़रीदना फ़िज़ूलख़र्ची समझते हैं) भला कोई कैसे यक़ीन कर लेता कि यह आलू और "कार्बोहाइड्रेट"का शिकार वही है जिसने कल तक मनभाते खानों के कैसे-कैसे अलबेले जोड़े बना रखे थे —— खड़े मसाले के पसंदे और बेसनी रोटी; क़ीमा भरे करेले और घी में तरतराते पराठे; मद्रासी बिरयानी और पारसी कोफ़्ते (वह भी एक लखनवी पड़ोसन के हाथ के); चुपड़ी रोटी और उड़द की फरहरी दाल; भिंडी और —— भिंडी! (भिंडी के साथ मिर्ज़ा किसी और चीज़ को शामिल करने के रवादार नहीं)

मिर्ज़ा को खाने का ऐसा हौका है कि एक मुँह उन्हें हमेशा नाकाफ़ी मालूम होता है!

उनके नदीदेपन को देखकर एक दफ़ा प्रोफ़ेसर क़ाज़ी अब्दुल क़ुद्दूस ने कहा था, "मिर्ज़ा तुम्हारा हाल गिरगिट जैसा है। उसकी ज़बान की लम्बाई उसके जिस्म की आधी होती है!" मिर्ज़ा की उदास आँखें एकदम

[1] ये लाभकारी जानकारियाँ मिर्ज़ा के देशव्यापी चटोरपन का निचोड़ हैं। उन्होंने सारी उम्र और किया ही क्या है। अपने दाँतों से अपनी क़ब्र खोदी है। (ले.)

मुस्कुरा उठीं। कहने लगे, "साहब! ख़ुदा ने एक गोश्त के टुकड़े को जाने किस लज़्ज़त में डुबो दिया। अगर सारा जिस्म इस लज़्ज़त से वाक़िफ हो जाता तो इंसान इसकी ताब न लाता। ज़मीन की छाती फट जाती!"

मिर्ज़ा पाँच-छह हफ़्ते में पलंग को लात मारकर खड़े हो गए। हम तो इसे उनकी संकल्प-शक्ति का चमत्कार ही कहेंगे, हालाँकि वे ख़ुद कुछ और वजह बताते थे। एक दिन उनकी आँतों से ख़ून कट-कटकर आने लगा। हमारी डबडबाई आँखों को देखा तो ढारस देने लगे "मैं मुसलमान हूँ। जन्नत का भी क़ायल हूँ। मगर मुझे वहाँ जाने की जल्दी नहीं है। मैं मौत से नहीं डरता। मगर मैं अभी मर नहीं सकता। मैं अभी मरना नहीं चाहता। इसलिए कि अव्वल तो तुम मेरी मौत का सदमा बर्दाश्त नहीं कर सकोगे। दूसरे, मैं पहले मर गया तो तुम मेरा ख़ाका (रेखाचित्र) लिख दोगे!" ख़ुदा बेहतर जानता है कि वे ख़ाके के ख़ौफ़ से स्वस्थ हुए या किसी के कथनानुसार मुर्ग़ी के मृत्युस्नान के जल से, जिसे वे 'चिकन सूप' कहकर सुड़क-सुड़ककर पी रहे थे। बहरहाल, बीमारी जैसे आई थी उसी तरह चली गई। फ़ायदा यह हुआ कि आलू से जो नफ़रत पहले अकारण थी अब उसका निहायत माक़ूल कारण हाथ आ गया। और यह सरासर मिर्ज़ा की नैतिक विजय थी।

आलू का मुँह काला, भिंडी का बोलबाला

जैसे ही मिर्ज़ा की सेहत और तबियत बहाल हुई, बग़दादी जिमख़ाने में यार लोगों ने भव्य पैमाने पर ग़ुस्ल-ए-सेहत के जश्न का आयोजन किया। स्वागत कमेटी ने फ़ैसला किया कि घिसे-पिटे डिनर डांस के बजाय फ़ैन्सी- ड्रेस बॉल का आयोजन किया जाए ताकि एक दूसरे पर हँसने का मौक़ा मिले। मुख्य अतिथि तक यह भनक पहुँची तो उन्होंने हमारी ज़बानी कहला भेजा कि नए हास्यास्पद लिबास सिलवाने की बिल्कुल ज़रुरत नहीं। सारे मेम्बर और उनकी बेगमें अगर ईमानदारी से वही कपड़े पहने-पहने जिमख़ाना चले आएँ, जो वे आम तौर पर घर में पहने बैठे रहते हैं तो मक़सद पूरा हो जाएगा। नृत्य के लिए अलबत्ता एक कड़ी शर्त मिर्ज़ा ने यह लगा दी कि हर मेम्बर सिर्फ़ अपनी बीवी के साथ नृत्य करेगा, मगर इस लपक और हुमक से जैसे वह उसकी बीवी नहीं है! जश्न की रात जिमख़ाने को झंडियों और भिंडियों से दुल्हन बनाया गया। सात कोर्स के डिनर से पहले रूई और काग़ज़ से बने हुए एक आदम-क़द आलू की अर्थी निकाली गई, जिस पर मिर्ज़ा ने अपने हाथ से ब्रांडी छिड़ककर माचिस दिखाई और स्वर्गवासी के "डिम्पल" पर गोल्फ़ क्लब मारके क्रियाकर्म किया गया। डिनर के बाद मिर्ज़ा पर टॉयलेट पेपर के फूल बरसाए गए और कच्ची-कच्ची भिंडियों में तौला गया जिन पर अभी ठीक से सुनहरा रोआँ भी नहीं निकला था। फिर यह भिंडियाँ हक़दारों यानी पेट के लखपति मरीज़ों में बाँट दी गईं। शैम्पेन से महकते हुए बॉलरूम में ग़ुब्बारे छोड़े गए। ख़ाली बोतलों की क़ीमत की भेंट एक अनाथालय को देने की घोषणा की गई। और ग़ुस्ल-ए-सेहत की ख़ुशी में कार्डरूम वालों ने जुए के अगले-पिछले सारे क़र्ज़े माफ़ कर दिए।

मिर्ज़ा बात-बे-बात मुस्कुरा रहे थे। तीसरा नृत्य ख़त्म होते ही हम अपनी कोहनियों से रास्ता बनाते हुए उन तक पहुँचे। वे उस क्षण एक बड़े ग़ुब्बारे में जलते हुए सिगरेट से सूराख़ करने चले थे कि हमने उसका ज़िक्र छेड़ दिया जिसकी शान में कल तक फ़रिश्तों की गुस्ताख़ी भी पसंद न थी[8],

"मिर्ज़ा! आलू अगर इतना ही हानिकारक है तो इंग्लैंड में इतना लोकप्रिय क्यों है? एक अंग्रेज़ औसतन दस औंस आलू हर रोज़ खा जाता है। यानी साल में साढ़े पाँच मन! सुन रहे हो, साढ़े पाँच मन!"

बोले, "साहब! अंग्रेज़ की क्या बात है! उसकी दरिद्रता से भी एक शान टपकती है। वह पिटता भी है तो एक हैकड़ी के साथ! लिन यू तांग ने कहीं लिखा है कि हम चीनियों के बारे में लोगों ने यह मशहूर कर रखा है कि अकाल पड़ता है तो हम अपने बच्चे तक खा जाते हैं। लेकिन खुदा का शुक्र है कि हम उन्हें उस तरह नहीं खाते जिस तरह अंग्रेज़ 'बीफ़' खाते हैं। यानी कच्चा!"

हम भी जवाब में कुछ कहना चाहते थे कि एक नुकीली एड़ी जो एक हसीन बोझ सहारे हुए थी, हमारे पंजे में बरमे की तरह उतरती चली गई। हमारी मर्दाना चीख़ 'FOR HE IS A JOLLY GOOD FELLOW' के कोरस में दब गई। और ईस्ट इंडिया कंपनी के ज़माने का बर्मी सागौन का डांस फ़्लोर बहके-बहके क़दमों तले फिर चरचराने लगा।

(ख़ाकम बदहन; 1965- 1968)

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
वरिष्ठ व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क

[1] नदवतुल-उलेमाः इस्लाम धर्म की शिक्षा के लिए लखनऊ में स्थित विश्वविख्यात मदरसा, जिसे शिबली नोमानी ने 1894 में स्थापित किया था। शिबली इस्लाम धर्म के विद्वान, इतिहासकार, उर्दू व फ़ारसी साहित्य के आलोचक, शोधकर्ता और कवि थे। उन्होंने अपनी आलोचना और इतिहास लेखन में भावना व आस्था के बजाय तथ्य और तर्क को महत्त्व दिया है।

[2] तर्जुमानुल क़ुरआनः मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा लिखित क़ुरआन पर टीका। वे अक्सर अपनी उर्दू रचनाओं और लेखों में बहुत मुश्किल और भारी-भरकम अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग करते थे।

[3] इमामुल-हिन्द--हिन्दुस्तान का इमाम या लीडर; अबुल कलाम आज़ाद की उपाधि

[4] चरग़ाः समूची बटेर या किसी और पक्षी का ख़ास तरीक़े से भुना हुआ गोश्त।

[5] मन्न-व-सलवाः कहते हैं कि यहूदियों के लिए खुदा हर रात आसमान से भोजन उतारता था। 'मन्न' कोई बहुत सफ़ेद और बेहद मीठी चीज़ थी। 'सलवा' बटेर जैसा कोई पंछी था जिसे यहूदी आसानी से पकड़ लेते थे।

[6] हिम्मत के हाथ में भाग्य का हाथ छिपा होता है। निम्नलिखित शेर की पहली पंक्ति की पैरोडी हैः

छुपा दस्त-ए-हिम्मत में ज़ोर-ए-क़ज़ा है
मसल है कि हिम्मत का हामी खुदा है। (मुसद्दस-ए-हाली-मौलाना हाली)

[7] चिराग़-तलेः यूसुफ़ी के खटमिट्ठे ललित निबंधों के पहला संग्रह का शीर्षक 'चिराग़ तले' है। (अनु.)

[8] हैं आज क्यों ज़लील कि कल तक न थी पसंद
गुस्ताख़ी-ए-फ़रिश्ता हमारी जनाब में (ग़ालिब)

यानी ऐ खुदा हम आज इतने क्यों ज़लील हैं जबकि एक वक़्त था फ़रिश्तों को भी हमारे सामने गुस्ताख़ी करने की अनुमति न थी। (उस वाक़ये की तरफ़ संकेत है जब खुदा ने फ़रिश्तों को आदम का सजदा करने का हुक्म दिया था और जब इब्लीस ने सजदा करने से इनकार किया तो खुदा ने अपनी बारगाह से लानत भेजकर निकाल दिया।